

## तवाँ करदन तमामी उम्र

हर इतवार की सुबह बड़ा इतंजार रहता था कि हॉकर अब आए, अब आए और वीकली लाए क्योंकि जब से कैमरा खरीदा है सुबह से रात तक फोकस मिलाने और एंगल देखने के सिवाय कोई और काम नहीं। हर बार वीकली में फोटो-कंपटीशन का शीर्षक देख लेता हूँ और फिर उसी विषय के दृश्यों की खोज के सपने भी आने लगते हैं। मई का शीर्षक था 'झुलसती धूप' और सच ही उन दिनों धूप झुलसती हुई थी पर मैं भरी दोपहर अड़क-सड़क के चक्कर काटा करता। जून का शीर्षक था 'ठंडी छाँव' और मैं दृश्य खोजने अकेला साइकिल पर शहर से बस मील दूर गया। जुलाई के 'मानसून' में सफलता मिली और सेकंड प्राइज मैंने पाया। बड़ा दिलासा मिला इससे मुझे। कमरे में मैंने 'मानसून' का इनलार्जमेंट दरवाजे के ठीक ऊपर लगाया, कैमरे के लेस को एक बार चूमा और क्षितिज की तरफ 'इन्फिनटी' की दूरी से एक बार क्लिक किया। मैं था कि बेहद खुश। अब साहब, अगली वीकली में शीर्षक आया, 'जिप्सी'। जिप्सी याने घुमक्कड़। यानी मुझे स्टेशन जाना चाहिए, कहीं घूमने की जगह जाकर सैलानियों को देखना चाहिए। निश्चय हुआ। हम दो मित्र। कंधे पर झोला, हाथ में टिफिन, रेनकोट और बगल में कैमरा। बादल थे कि छाए हुए, ऐसी अँधेरी घुमड़ी कि लगा कभी बरसे तो दिन-भर न थमने के।

'बाबूजी वीकली।'... हॉकर वीकली दे गया, इसमें ही जिप्सी का नतीजा छपा है पर क्या हो देखकर। मैं कोई फोटो भेज ही न पाया, लगा जैसे मैं तमाम उम्र जिप्सी को ढूँढा किया हूँ और उसका फोटो न ले पाया। मैं नई आई वीकली के पन्ने पलटने लगा। उत्सुक था कि किसे और कौन-से फोटो पर पहला प्राइज मिला है। जिपसी का पन्ना सामने आते ही मैं ऐसे चौंका कि गूलर का फूल देख लिया हो जैसे। आँखें मसलीं, बड़े गौर से फोटो देखा। चश्मा लगाकर देखा, चश्मा उतारकर देखा। फोटो को आँखों के नजदीक लाकर देखा, उसे आँखों से दूर रखकर देखा। मैं उठकर कमरे में टहलने लगा। जिसे प्राइज मिला, उसका नाम पढ़कर मैं परेशान हो गया। मैं कभी अपने बालों को खींचता, कभी उँगलियाँ तोड़ता, कभी कुरती पर बैठकर उस इनाम पाई तसवीर को देखने लगता, फिर वीकली को बंद कर टेबिल पर पटक देता और दूसरे ही पल जल्दी-जल्दी उस पृष्ठ को ढूँढ़ने लगता कि जिस पर वह फोटो छपा था, वैसे में मैं एक पागल जिप्सी की तरह लग रहा होऊँगा।

रविवार: 16 अगस्त

हम दो मित्र। कंधे पर झोला, हाथ में टिफिन, रेनकोट और बगल में कैमरा। सुबह छह बजे शहर से चले। बस खचाखस भरी थी। पता लगा, सभी मांडव जा रहे हैं, इंदौर से साठ मील दूर है। यूँ बस वाला सब दूर घुमाता नहीं पर कोई पंद्रह रुपए दे दे तो वह सारे दिन किले-खंडहर दिखाया करता है और ड्राइवर खुद गाइड बन जाता है। बस में मांडव की ही चर्चा थी। कोई कहता कि काँकड़ा खोह में तल दिखाई ही नहीं देता, कोई कहता बाजबहाद्र के महल से रूपमती का महल साफ दिखाई देता है, तभी तो रूप वहाँ से तान छेड़ती और बाज आलाप लेकर उसका जवाब देता। जितने मुँह उतनी बातें, पर हमारी तो अँखें ही व्यस्त थीं कि कौन-सा सैलानी हमें प्राइज दिला सकता है। वह और मैं एक साथ ही चौंके - सामने वाली सीट के पीछे तीन बुढ़ियाओं के बीच बैठी लड़की पर हम दोनों की आँखें ठहर गईं। वह खिड़की से बाहर सिर निकाले देखती बैठी थीं साफ धुली साड़ी और सीधे हाथ का मालवी पल्ला, पंद्रह की उम्र में भी सिर ढँके थी, पर हवा थीं कि सिर नहीं ढँकने दे रही थी। लगता कि वह हर क्षण नए-नए पोज दे रही है। कंधे पर झोला था, जिस पर लोककला के हत्ती-घोड़े-पालकी बने थे। झोले में क्छ वजनी चीज थी। वह पाँवों पर अपना लाल रंग का रेनकोट रखे थी जो बार-बार नीचे गिर जाता था। उसने जब हवा से परेशान होकर सिर अंदर कर लिया तो चेहरे पर अभ्रक की-सी चमक दिख पड़ी। मन को लगा कि यही है वह जिप्सी जिसको हमें अपने फोकस में लाना है। अभ्रक की चमक को छोड़ मेरी आँखें उसकी पलकों पर ठहर गईं। सच कहँ, वैसी पलकें मैंने कहीं नहीं देखीं। वैसी लंबी-लंबी पलकें गुलाब के पूरे खिले फूल की दो पंख्रियों-सी, केवड़े की दो पत्तियों-सी, नन्हीं-नन्हीं नावों के दो हवा-भरें पालों-सी... लगता जैसे पलकों की इच्छा से ही अंदर की प्तलियों को देखने का अधिकार मिला। बस में वह पास बैठी बुढ़िया की एकाध बात का जवाब दे देती थी और बाहर को ही देखती रहती थी।

धार में बस रुकी तो वह नीचे उतरकर चारों तरफ देखने लगी - जैसे उसका अंग-अंग जिप्सी है - अलग-पलक, साड़ी का पल्ला, चोटी का रिबिन, कदम, उँगलियाँ... अलकें हैं कि जरा-सी हवा में तूफान मचाएँ, पलकें है कि ठहरती ही नहीं, पल्ला है कि हर बार खिसक जाता, रिबिन है कि पंछी के लंबे-लंबे पंख, कदम पल में यहाँ, पल में वहाँ जैसे बेहद बेचैन हैं और उँगलियाँ हैं कि इस हाथ की पाँचों उस हाथ की पाँचों को तोड़े जा रही हैं। हम दोनों ने कैमरे केस से बाहर निकाल लिए। उसने हमारी तरफ देखा, पर देखा-भर, जैसे हमें देखने को उसका मन नहीं न हो। कोई पंद्रह मिनट बाद बस फिर आगे बढ़ी। नालछा के बाद मांडव की सरहद शुरू हो गई। हर और हरियाली अलग-अलग शेड की हरियाली। पहली बार आँखों ने अनुभव किया कि अकेला हरा रंग ही कितनी तरह का होता है। काँकड़ा खोए की गहराई दिखाई दी। बस रूकी और सब के सब खोह देखने लगे। इसने मांडव को तीन तरफ से घेर रखा है। लोककला का झोला कंधे पर टाँगे वह लड़की बाएँ से घूमकर हमारे ठीक सामने खोह को देखने लगी। वहाँ से लगभग वह चिल्लाई, 'भैयन, इधर देखो, इधर से फॉल को देखो। कितना नीचे

गिरता है।' एक छोटा-सा लड़का उसके पास दौड़ गया। इतनी देर में मैंने लड़की का एंगल जमा लिया था। मेरा दोस्त घबराया हुआ कह रहा था, 'जल्दी कर, जल्दी कर, नहीं तो वह देख लेगी।' मुझे दूरी देखने में इतनी देर हुई कि वह लड़की चट्टानों की ओट में चली गई - पहले स्नेप में शायद काँकड़ा खोह की बड़ी-सी चट्टान ही आई हो।

बस फिर आगे बड़ी... आलमगीर दरवाजा, भंगी दरवाजा और कबानी दरवाजा... पहले इधर से दिल्ली दरवाजे तक जाने के लिए रास्ता था, कहते हैं पहले हाथी जाते थे उधर से। वह लड़की दिल्ली दरवाजा दखने के लोभ से टीले पर चढ़ गई। पंजों के बल ऊपर उचककर उसने दूर देखा और मुझे देखते ही कि मैं उसका फोटो उतार रहा हूँ, वह नीचे बैठ गई, दूसरे स्नेप में शायद टीले के पेड़ ही आए हों।

वह बोला, 'लड़की समझ गई है शायद कि तुम उसका फोटो लेना चाहते हो।'

मैंने यही कहा, 'समझ जाने दो।'

'कहीं उसके साथ की ब्ढ़िया देख लेगी तो बस में खैर न समझो।'

'इतना डरने की कोई जरूरत नहीं।' मैंने बताया उसे, 'लड़िकयाँ खुद अपनी तसवीर उतरवाने की शौकीन होती हैं।'

'और तुम-जैसों का जुलूस निकलवाने की भी।' उसने लगभग डाँट ही दिया मुझे।

बस मांडव पहुँच गई थी। पानी रिमझिमा रहा था और ऊदे-ऊदे बादल बीत वैभव के खंडहरों पर अपनी छायाएँ डाल रहे थे। हम अपने कंधों पर रेन कोट डाले मस्ती में झूमते हुए जामा मस्जिद देखने लगे।... कितनी बड़ी मस्जिद, कैसी लंबी-चौड़ी... कितनी देर तक इस गुंबद में आवाज गूँजती है! हम अपनी आवाज की कंकरियाँ गुंबद में कैद हवा के तालाव में फेंकते रहे और बजती-मिटती-गूँजती लहरों को सुनते रहे।... पर वह लोक-कला के झोले और लंबी-लंबी पलकों वाली लड़की कहाँ गई? मैंने पीछे घूमकर देखा कि वह सामने अशर्फी-महल के पत्थरों को हाथ से छू-छूकर महसूस कर रही थी। हम दोनों बात-की-बात में वहीं जा पहुँचे। उसका भैयन पीछे पड़ गया था। मैंने उसकी तरफ चाव से देखा। बोला, 'तुम्हारा फोटो उतार लें।' उसने एकदम 'ना' कहा और बोला, 'हमारी दिद्दी नाराज होगी।' इतना कहते ही वह दीदी के पास दौड़ गया। मैं पत्थर की ओट में हो गया। वह लड़की हाथ उठाकर उत्तर की तरफ का विजय-स्तंभ दिखा रही थी। कैमरे में वह साफ दिख रही थी - लंबी पलकों वाली जिप्सी का ऐसा प्यारा मनभावन पोज... मैंने क्लिक किया... पर केवल एक सेकंड

चूक गया, वह एक दम आगे बढ़ गई थी... तीसरे स्नेप में उसके भैयन का फोटो आया होगा।

बस फिर आगे बढ़ी। रेवाकुंड का पानी लहरों में उठ-उठकर सड़क छू रहा था। कहते हैं कि नर्मदा का पानी इस कुंड में आ गया है। सामने है बाजबहादुर का महल। लंबे-लंबे चौक, भारी खंभों वाले बरामदे। हम ऊपर जाने की सीढ़ियाँ ढूँढे तब तक लोक-कला के झोले वाली लड़की ठीक उस टेरेस तक जा पहुँची थी जहाँ से बाज रूप की स्वरलहरी सुना करता होगा। नीचे के हमाम में लबरेज पानी भरा था। उस लड़की की छाया पानी की लहरों पर तैर-तैर जाती थी। मेरा कैमरा पानी की सतह पर उसको देखने लगा, तभी मेरे दोस्त ने पानी में दोनों पाँव डुबा दिए और पानी हिल गया और लहरों ने उसकी परछायीं को अपने आँचल में यूँ छिपा लिया जैसे उसकी लंबी-लंबी पलकें शोख प्तियों को छिपा लिया करती हैं। मेरा चौथा स्नेप शायद काला हो गया होगा।

अब चढ़ाई शुरू हुई सब रूपमती के महल जा रहे थे...। कितने ऊँचे पर है महल। छोटे-छोटे बादलें कभी हमारा माथा चूम जाते, कभी हमारे पाँवों से लिपट जाते, यूँ लगता जैसे हम शाही-महफिल में बैठें हैं और भरी-भरी ग्लाब-दानियों से हमारे स्वागत में फौब्बारे छोड़े जा रहे हैं। उत्तर देखें कि दिक्खन देखें कि पच्छिम देखें - हरा और हरा रंग। धूप का छोटा-सा ट्कड़ा महल से सामने वाली पहाड़ी तक झूल जाता, जैसे किरनों की डोर से सच ही कँसी ने झूला बाँध दिया हो और सबके मन बिना मोल झुलाए जा रहे हों। ऐसी हरियाली कि मन हो चुल्लू अपने होठों लगा उसे पी लें। तन को उँधर कर बादलों को पहन लें। कोई बादल ठहरें तो उस पर बैठकर सामने वाली पहाड़ी पर जा पहुँचें। यहाँ बैठकर दूर और बहुत दूर दिखने वाली नर्मदा की रेखा को निहारें, कि दोनों हाथ फैलाकर अपनी प्रेमिका की पूरी साँसों से पुकार लें। लोक-कला के झोले वाली लड़की की तरफ देखते ही मेरा ध्यान बँटा और हाथँ कैमने पर व्यस्त हो गया। उसने अपने झोले की बटन खोली। मैंने वैसे में ही क्लिक किया पर मेरे दोस्त ने मेरा कंधा हिला दिया, वह दिखाना चाहता था, कि सामने की गहरी हरियाली पर धूप का टूकड़ा, मृगछौने की तरह लग रहा है। मैं पाँचवें स्नेप के बिगड़ जाने के दुख में था। उधर को देखा तो उस लड़की के हाथ में भी कैमरा था, वह कैमरा निकालकर झोले के बटन बंद कर रही थी। मैं उसका बाईं आँख से फोकस मिलाना देखता रहा। दोस्त से प्छा, 'यह दाहिनी आँख से क्यों नहीं देखती?' वह हँसकर बोला, 'जैसे किसी-किसी का बायाँ हाथ चलता है वैसे ही इसकी बाई आँख चलती होगी।' वह हँसा था पर लड़की नाराज-सी हो गई थी जैसे लोगों के हल्ले से उसका एंगल बिगड रहा हो।

में बड़ा परेशान-सा हो गया था, और परेशान जिसके कारण हुआ था उसी लंबी-लंबी पलकों वाली की तरफ बार-बार देख लेता था... ओह, कि-त-नी लंबी पलकें! ऐसी लंबी पलकें मैंने कभी नहीं देखीं। बस दुबारा रूकी थी। वह था प्रति ध्वनि-स्थल। सागर तालाब के पानी में महलों के गुंबद कटोरियों से लग रहे थे। ड्राइवर बतला रहा था, '1952 में जब नेहरू यहाँ आए थे तो उनकी आवाज भी लौटकर आई थी।' एक-एक कर सभी उस पत्थर पर जाकर पुकारते और उनकी आवाजें ठीक वैसी-की-वैसी ही लौटकर आतीं। हम दोनों अपनी प्रमिकाओं के नाम पुकारने पर तुले थे। मैंने पूरी आवाज में पुकारा, 'रे...णु...!' आवाज लौटी, 'रे...णु...।' दोस्त मजाक किए जा रहा था कि कभी रेणु इस प्रतिध्वनि को सुन ले तो इस गुस्ताखी को कभी माफ न करेगी। तभी मैंने देखा कि वह लड़की पत्थर पर जाकर खड़ी हो गई है। मेरे कैमरे ने क्लिक किया कि वह पत्थर से नीचे उतर आई, 'नहीं, हम तो नहीं।' उसका चेहरा गुलाबी हो गया था और पलकें तेजी से उठ-गिर रही थीं। उसके भैयन ने पुकारा, 'रेणु!' और ध्वनि लौटे उसके पहले ही मैं परेशान हो गया। वह बच्चा पीछे रह गया था, मैंने पूछा, 'तुमने रेणु क्यों पुकारा?' वह हँसकर बोला, 'तुमने बोला तो मैंने भी बोल दिया।'

बस चली और स्नेप का सातवाँ नंबर मेरे सामने था।... तो यह है नील कंठेश्वर का मंदिर। पानी की यही धार महादेव का अभिषेक करती है, कहते हैं पहले इस धार से हमाम का कुंड भरा रहता था और सुलतान की मरजी पर रानियाँ कुंड-किनारे अपने कपड़े उतार इसके ठंडे पानी में छिपा-छिपी खेला करती थीं। पानी की धार कहीं ऊपर से नीचे आ रही थी, कहीं भूल-भूलैया में भटककर रास्ता खोज रही थी। सामने काँकड़ा का हरा गहरा समुंदर... और वह लड़की उस समुंदर के किनारे ही खड़ी थी। उसने देख लिया कि मैं अपना कैमरा उसकी तरफ किए हूँ, तो वह इतनी चपल हो गई कि जैसे गिलहरी हो और सच, बड़ा मुश्किल है उसके देखते उसका फोटो उतार लेना। स्नेप बिगड़ गया और हम शिलालेख पढ़ने लगे। तीसरे शिलालेख पर नजर अटक गई -

'तवाँ करदन तमामी उम्र, समरूफे आबोगिल।

के शायद यकदमे साहिब -दिले, ईजाँ कुनद मंजिल।।'

मेरा दोस्त उसका अर्थ सारी भीड़ को समझा रहा था, 'मिट्टी और पानी के इस काम में अपनी तमाम उम्र हमने एक इस आस में खत्म कर दी कि कोई साहिब-दिल आदमी यहाँ दम-भर के लिए आकर अपना पड़ाव डाले।' मेरे औंट शिला-लेख नंबर तीन की सतरों में खो गए, 'तवाँ करदन तमामी उम्म-सच, मेरी तमाम उम्म इस लोक-कला के झोले वाली लड़की का फोटो उतारने की आशा में खत्म हो जाएगी।' मेरी बात सुन वह

जोर से हँसा था पर मैंने उस लड़की की तरफ भीख माँगने की-सी मुद्रा में एक बार देखा था, 'तवाँ दबाने चली गई थी।

खुरासानी इमली के मोटे तने वाले पेड़ दूर तक फैले थे। महमूद खिलजी ने उन्हें अफ्रीका से मँगवाने के लिए तमामी उम्र तवाँ कर दी थी। इस बार जहाँ बस रूकी - वे थीं लोहानी गुफाएँ। 'फॉल' से गिरता ठंडा सफेद पानी और गढ़ की दीवार से दिखती खोह। पानी में से गुफा की ओर का रास्ता। अँधेरी और धूल भरी बुद्ध-गुफाएँ। वह लड़की फॉल की तसवीर लेने में लगी थी। मैं मौका कैसे चूकता पर उसे मुझ पर संदेह हो गया ओर वह एक बुढ़िया की ओट हो गई जैसे हिरनी हो पर मैं शिकारी तो नहीं, बेचारा फोटोग्राफर था। स्नेप के आठवें कत्ल के समय मेरी उदासी बोली थी, 'तवाँ करदन तमामी उम्र...।' बाकी के शब्द मैं भूल चुका था और अब वापस नीलकंठेश्वर लौटने का भी कोई चारा नहीं था।

...ये है जहाज महल... इधर मुंज तालाब, उधर कपूर सरवर। दोनों का पानी एकनहर की डोर से एकमेक है। महल की छत से कमल के फूले-फूल देखों तो यूँ लगता है जैसे जहाज में खड़े हों। मुझे लगा कि वह लड़की अपनी लंबी-लंबी पलकों के परदे उठाए आँखें के सायबान में कमल और लहरों की तसवीरें टाँग रही है। तवाँ करदन तमामी उम्र, पर उसने तसवीर न लेने दी।

पस में है हिंडोला महल। दीवारें ऐसे कुछ बनी हैं कि जैसे दीवारें न हों चार लड़कियाँ हों, जो चारों तरफ बने डाल-झूले पर चढ़ी नीम की फुनगी छू लेने की कोशिश कर रही हों। वह लोक-कला के झोले वाली लड़की सीढ़ियाँ चढ़ती ऊपर चली गी। मैं सामने की दीवार के सहारे सीढ़ियों के दरवाजे का एंगल जमाये खड़ा हो गया। दोस्त ने कहा था कि वह उसे आता देखता रहेगा और हाथ ऊपर उठाएगा तभी मैं स्नेप ले लूँगा। हम दोनों साँस रोके खड़े रहे। मेहराब के ऊपर बनी बेगमों की पालिकयों पर कुछ लोग घूम रहे थे। कुछ थे कि जलमहल चले गए थे, कुछ थे कि नाहर-झरोखा देखने में लगे थे। सीढ़ियों पर मीठी आवाज सुनाई दी - मैं सतर्क हो गया, पाँव बजे, मैं कुछ आगे आ गया। मेरे दोस्त ने हाथ उठाया कि मैंने क्लिक किया... पर सामने से आती बुढ़िया दिखाई दी और साथ था भैयन। मैंने दोस्त को एक घूँसा जमा दिया। पता नहीं वह लड़की जाने कब नीचे उतर आई थी। तवाँ करदन तमामी उम्र और दसवाँ स्नेप चला गया।

सामने थी चंपा बावड़ी, ऊपर तक पानी भरा था और पानी के अंदर तहखाने के रास्ते दिखाई दे रहे थे। लड़की पानी में झाँक रही थीं। मैंने पल-भर की भी देर न की और

स्नेप ले लिया। वह गुस्से में घूमी कि दूसरा स्नेप ले लिया। मेरे चेहरे पर खुशी थी... तवाँ करदन तमामी उम्र पर तसवीर तो ले ही ली। उस लड़की ने कैमरा बंद करके झोले में रख लिया था, तब बस चली तो पुतली-पलंग पर लंबी-लंबी पलकों की चिक डाकर उसकी दो और दो चार उँगलियाँ भौंहों पर ऐसे घूमने लगीं जैसे परदेश गए राजा के सिंहासन की कोई चार सिपाही रखवाली कर रहे हों। तवाँ करदन तमामी उम्र पर वह फिर ऐसे कोने में दुबकी कि नजर न आई।

सोमवार: 17 अगस्त

कमरे में घूप अँधेरा था और फिल्म-रील धोई जा रही थी। मैं सोच रहा था कि बारहवें स्नेप में उस पलकों वालों जिप्सी का फोटो इतना अच्छा आया होगा कि फर्स्ट प्राइज मुझे ही मिलेगा। तसवीर में उसकी साड़ी की लकीरों वाली बार्डर भी होगी और कमर से कुछ नीचे लटकाए झोले के हती-घोड़े-पालकी भी होंगे। पर भरी फसल पर जैसे कुहरा बरस गया। दस स्नेप तो बिगड़े ही ग्यारहवें में चंपाबावड़ी का पत्थर था और बारहवें में... बारहवें में उसकी साड़ी की लकीरों वाली बार्डर थी, उसके झोले के हती-घोड़े-पालकी थे, उसके संगमरमरी हाथ थे, कलाइयाँ थीं, कलाइयों में चूँड़ियाँ थीं, पर उसका चेहरा नहीं था, गरदन से ऊपर फिल्म की काली सीमा थी। उसकी लंबी-लंबी पलकों काली आँखें मांडव के खंडहरों में ही रह गईं। तवाँ करदन तमामी उम...

में कमरे में तेज-तेज कदमों से टहल रहा था। 'जिप्सी' के जिस फोटो पर फर्स्ट प्राइज मिला था उसे एक बार, दो बार, दस बार, टकटकी लगाकर देखा और देखता रहा। वह मेरी ही तसवीर थी, मैं उसमें एक पागल जिप्सी की तरह कंधे पर रेनकोट डाले कैमरा छाती पर साधे, जाने किधर, जाने क्या देख रहा था। लोक-कला के झोले वाली उस लड़की ने हिंडोला महल की बेगम वाली पालकी से वह फोटो उतार लिया होगा। मैं सीढ़ियों से उसके आने के इंतजार में, दोस्त के इशारे की राह देखता पागल जिप्सी की तरह व्यग्र और आतुर-बितुर हो रहा था। सोचते-सोचते मैं एकदम रूक गया और आरामकुरसी पर सारे शरीर को मैंने ढीला छोड़ दिया। तवाँ करदन तमामी उम... उसने भी तो यह सुना था। मेरे बारह स्नेप गए उसकी पलकों की तसवीर के लिए... तो क्या उसके मन के परदे पर कभी एक पल को, कैमरे में मेरी छाया देखने से पहले, मेरी दुबली-सी जिप्सी बनी ऊँचाई न काँपी होगी? क्या उसे अच्छा न लगा होगा कि कोई एक उस एक के फोटो के लिए 'जहाज' से 'हिंडोला' की दूरी एक किए दे रहा है! जब बस चली थी तो क्या पुतली-पलंग पर उसने मुझे ही बैठाकर लंबी-लंबी पलकों की चिक न डाल दी होगी और अपनी दो और दो चार उगलियों को पहरे पर तैनात न कर दिया होगा?... मैं उठ गया और तेज-तेज कदमों से कमरे की सीमा नापने लगा। वीकली में

मेरे फोटो वाला या उसके इनाम वाला या मांडव की याद वाला या लंबी-लंबी पलकों वाली के चित्र से अपने कैद हो जाने के आभास वाला पृष्ठ हवा में ठीक वैसे ही उड़ा रहा था, जैसे जहाज महल की छत पर से मुंज तालाब की लहरों पर कमल के दीपक देखकर लकीरों की बार्डर वाली साड़ी का पल्ला हिला था।

दिन बीते, हफ्ते बीते, महीने बीते, बरस भी - सब बीतते गए पर वह लंबी-लंबी पलकों वाली लड़की न दिखी तो न ही दिखी। तबाँ करदन तमामी उम्र और एक दर्द मोल ले लिया। तमाम शुद।

पुनश्चः जानता हूँ कि यह पत्र नहीं है, जो ताजी कलम से छूटी हुई बात पुनश्च लिख दूँ पर बरस बीतने पर भी एक ऐसी बात हुई कि 'तमाम शुद' के बाद भी कुछ बांकी रह गया।... हम मांडव गए थे तब जैसे ही बादल घिरे थे उस दिन भी। मैं कॉलेज से लौट रहा था, जल्दी में यूँ था कि कहीं झड़ी न लग जाए। देखता क्या हँ कि वही-की-वही लड़की सामने से वैसे-की-वैसी चली आ रही हो। लोक-कला का वैसा-का-वैसा ही हती-घोड़े-पालकी वाला झोला कंधे पर। पुतलियों पर वैसी-की-वैसी ही लंबी-लंबी पलकें। वैसे-के-वैसे ही संगमरमरी हाथ। वैसे-का-वैसा ही सिर को छूता मालवी पल्ला। में था तो रूक गया। तवाँ करदन तमामी उम्र पर आज तो दिख ही गेई। मैंने साहस बटोरकर कहा, 'बधाई।' वह ठहर गई। उसने प्रश्न ही लौटाया, 'बधाई?' मैं फिर बोला, 'कल्पना में नहीं, सपने में भी नहीं सच - हाँ बधाई। वीकली की कंपीटीशन में पहला इनाम पाने के लिए।' उसने जैसे याद-सा किया कुछ -'इनाम! मुझे कहाँ मिला?' सच, वह वैसे बनने में बड़ी भली लग रही थीं मैं बोला, 'एक बार आप मांडव गई थीं और आपने हिंडोला महल से मेरा फोटो उतार लिया था। आपका नाम रेण्...।' वह हँस दी, 'मैंने नहीं। मेरे बड़े भैया ने उतारा था। उनका नाम रेणु है। वे फोटो-ग्राफर है।' मुझे ऐसा लगा जैसे मैं हिंडोला महल की बेगम-पालकी से नीचे गिर गया होऊँ। अब याद आया कि उस सफर में मैं और वह लंबी-लंबी पलकों वाली लड़की ही नहीं, और लोग भी थे, और हमारे पास ही कैमरे नहीं थे और लोगों के पास भी थे। वह तभी धीरे से बोली, 'भैया जानते होंगे आपको... पर शायद ही जानते होंगे। परसों के दिन मुहल्ले का टामी हमारे आँगन मे आ गया था पर मैं उसे बिलकुल नहीं पहचानी। पिछली जनवरी की कंपीटीशन में उसके फोटो पर ही मुझे कंसोलेशन प्राइज मिला था। देखिए... जिसका फोटो उतारो उसे याद रखना बड़ा मुश्किल है...।'

मैं उसकी तरफ देखता ही रहा और वह नमस्कार कहती चल दी। उसकी लंबी-लंबी पलकों को याद करते मुझे ऐसा लग रहा था कि मांडव के नीलकंठेश्वर का तीसरा शिलालेख 'तबाँ करदन तमामी उम्म' कहीं पहले किसी जन्म में मैंने ही तो नहीं लिखवाया था?